क्रंदन

(कविता)

कल्पना शुक्ला त्रिवेदी

शब्दांकुर प्रकाशन
SHABDANKUR PRAKASHAN

क्रंदन

(कविता)

ISBN: 978-93-85776-33-5

रचनाकार
कल्पना शुक्ला त्रिवेदी

संस्करणः प्रथम (2019)
मूल्यः ₹ 100/-

सर्वाधिकार
लेखकाधीन

टाइपसेटिंग
कंचन चौहान

आवरण
के. शंकर

मुद्रक
जे. के. ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। लेखक की अनुमति के बिना इसके किसी भी अंग का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

प्रकाशक
शब्दांकुर प्रकाशन
J-2nd-41, मदनगीर, नई दिल्ली 110062
दूरभाष : 09811863500
Email: shabdankurprakashan@gmail.com

भूमिका

क्रंदन (कविता) की पाण्डुलिपि हाथ में है। इसकी रचना की है कल्पना शुक्ला त्रिवेदी जी ने। कविता तीन अक्षरों से निर्मित शब्द है। 'क' से कल्पना, 'वि' से विचार, और 'ता' से ताल। इस प्रकार कविता, कल्पना, विचार और ताल की त्रिवेणी है, संगम है। यह अद्भुत संयोग है कि कविता की कल्पना स्वयं कवयित्री का नाम है। विचारों से वह ओत–प्रोत है तथा तालबद्ध कविता सम्मुख है ।

वास्तव में कल्पना शुक्ला अपनी किशोरावस्था से ही काव्य के भाव संजोने लगी थी। प्रथम बार अहोरवा भवानी माता के दरबार में मुझे एक कवि सम्मेलन में कल्पना शुक्ला को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सुनकर हतप्रभ रह गया। शब्द चयन, प्रस्तुति और वाणी का अनूठा संगम देखने को मिला। प्रतिभा स्वयं मुखरित हुई। बड़ी शुभ घड़ी थी। साहित्य जगत को मातु अहोरवा ने एक श्रेष्ठ कवयित्री प्रदान कर दी।

भाई शिवशरण शुक्ल ने मुझसे कल्पना को कविता के क्षेत्र में ले जाने की बात कही जिसे मैंने प्रथम दृष्टया ही मना कर दिया और मंचों पर व्याप्त विद्रूपता की याद दिलाई। किन्तु शिवशरण शुक्ल के कथन कि "क्या प्रतिभा का हनन कर दिया जाये? क्या कल्पना को निर्मूल कर दिया जाये।" तर्क पर मैं निरूत्तर हो गया। अंततः यह सुझाव दिया कि सात भाइयों की छोटी बहन को तभी मंच दिया जाय जब कोई भाई छायावत इसके साथ रहे। इसका अक्षरशः भाइयों ने पालन किया, और आज कल्पना न केवल अखिल भारतीय मंचों की शान है अपितु क्रंदन की रचयिता भी है। यह अहोरवा माँ का कृपा प्रसाद है।

क्रंदन के अंतर्गत प्रस्तावना में ही कल्पना ने नारी पर हो रहे अत्याचार–अनाचार की झलक प्रस्तुत की है, जो इस कविता का हेतु है। चिन्तनीय स्थिति है –

धरा कर नूपुर रुनझुन शून्य,
त्यक्त कर निःश्वन जग अभिसार।
रमणियों के कोमल पद कंज,
न कर जायें नीरव संसार।।

नारी की परिभाषा में कल्पना की कल्पना ने कमाल ही किया है। अपनी तार्किकता से पूर्व में प्रदत्त नारी के सारे उपमानों को उसने खारिज किया है। अबला कहलाना उसे कदापि स्वीकार नहीं है–

अबला है बिलकुल शुद्ध झूठ।
यह मत है किस पाखण्डी का।

कल्पना ने बड़े ही सरल किन्तु अदभुत ढंग से नारी की परिभाषा प्रदान की है–

फ़िर क्या है? कहना मुश्किल है,
संसृति का एक अजूबा है।
यह है निमग्न संसार मध्य,
संसार इसी में डूबा है।।

नारी के माँ, पत्नी, भगिनी, पुत्री के रूपों का सुन्दर वर्णन करते हुए कल्पना ने नारी के त्यागमयी स्वरूप का सटीक वर्णन किया है –

सोने का तन तो बेच दिया।
चाँदी का मन भी गिरवीकर।
अपना अस्तित्व मिटा डाला
रह गयी त्याग–प्रतिमा बनकर।।

नारी का अपमान सारी संसृति का अपमान है। नारी की वेदना आँसू बनकर जब टपकती है तो श्वेत शुद्ध शबनम बन जाती है। नारी की मृदु श्वांस प्रलयपूर्ण लू बन जाती है। नारी पृथ्वी पर अमृत वर्षा करती है। नारी सौन्दर्य का, सुषमा का स्वरूप है। वह प्रकृतिमयी है–

यह नियति और तू साथ–साथ,
जन्मी थी संग–संग खेली थी।
या यूँ कह लूँ यह प्रकृति और,
तू उसकी एक सहेली थी।।

नारी प्रकृति के साथ–साथ पली और बढ़ी है। इसके क्रमिक विकास का बड़ा ही सुन्दर और मनोहारी रूप प्रस्तुत किया गया है। स्वार्थी मानव प्रकृति और नारी दोनों का समान रूप से शोषण करता रहा है–

बस दौड़ पड़ा सत्वर मानव,
उसकी टहनियाँ कुतर डाला।
जिससे न मृदुलता बने,
रंगीन वसन इस पर डाला।।

प्रकृति और नारी की उमंग तरंग, माली द्वारा पोषण और रखवाली, कैंची से कटाई–छँटाई और कदम–कदम पर नियंत्रण उसे त्रस्त कर देता है। उसकी स्वतंत्रता की चाह एक छटपटाहट बन कर रह जाती है –

तन पर शासन करते ही थे,
मन तो रहने देते स्वतंत्र।
यह वीर भोग्या वसुंधरा का,
बदलो अपना मूलमंत्र।।

कल्पना का यह कथन कि कायर कोई नहीं होता केवल कमजोर हुआ करते हैं, जिससे सर्वस्व छिन जाता है। नारी कमज़ोर नहीं है। उससे छल करना सबसे बड़ा पाप है। नारी के जन्म से ही घर में मातम की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ससुराल पहुंच कर वह एकाकी सी हो जाती है –

अपनी अथ–इति अपना सुख–दुख,
अपने से बतराया करती।
अपनी करुणा का मौन गीत,
मन में ही दुहराया करती।।

मानव उसके गीतों को सुनने की शक्ति नहीं रखता है, वह लास्य और संगीत का प्रेमी है। वह अत्यन्त दुखी और त्रस्त हो जाती है। वह मूर्तिमान करुणा नज़र आती है। ससुराल में बंदीघर का स्वरूप उसे

दिखाई देता है–

हैं ननद–सास संतरी, ससुर–
जेलर सम शोभा पाता है।
यों उसके अपने पति का घर,
भी बंदीघर बन जाता है।।

पश्चिमी देशों में शादी समझौता है, तो अपने देश में शादी मृत्यु का आमंत्रण है। उसे मैडम, डीयर, स्वीटहार्ट कहकर बहलाया जाता है किन्तु वह तो प्रेम की भूखी है। उसे नारी के "अवगुण आठ सदा उर रह हीं" का कथन स्वीकार्य नहीं है। नारी पर लगाये गये लांछन, दुस्साहस, चपलता, अनय, अपवित्रता, विवेकहीनता वह सहज ही झुठलाती है। नारी का दूध पीकर उसे किसी ने अपवित्र नहीं कहा। उसी ने नर को ज्ञान दिया –

जब उससे कुछ कहना सीखा,
अज्ञान क्यों नहीं कहा उसे?
जब दूध पिया उसका उस क्षण,
अपवित्र क्यों नहीं कहा उसे?

मानव ने नारी को नियति से क्रूर जीवन में बाधक, काले मन वाली, विचित्र मदिरा, मादकता का हेतु कहा है। इसके पीने का आदि–अंत नहीं मिलता –

पीने पर फिर–फिर पीने पर,
होता फिर भी संतोष नहीं।
पीकर फिर फिरकर पी लेना,
मदिरा–प्याली का दोष नहीं।।

नारी विष प्याली के साथ अमृत प्याली भी है। उसके बंकिम नेत्र वृद्धापन को मिटा देते हैं। उसकी जीवंतता, रत्नगर्भा ईश की जन्मदाता अनिद्रा सुन्दरी है ।

सौन्दर्य बोध कराने में नवीन उपमाओं–उपमानों का सृजन किया

गया है –

नाभी के चक्कर सा चक्कर,
यमुना जल भँवरों को आया।
उसकी मसृण जंघा लखकर,
खिसियाया कदली का पाया।।

नारी को अपनत्व की चाह है। उसके साथ हुए छल कपट, दुष्कर्म उसकी पवित्रता को कलुषित किये जाते ही सारा समाज उसको अपने–अपने ढंग से कलंकित कर भुनाने लगता है। वह नियति के हाथों की कठपुतली हो जाती है ।

पत्रों ने उसके चित्रों को,
ले–लेकर खूब प्रचार किया।
कितनी ही सत्य कथाओं ने,
उससे अपना व्यापार किया।।

नारी पर प्रश्नचिह्न लगते देर नहीं लगती। जननी पर अत्याचार असह्य हो जाता है ।

कल्पना शुक्ला त्रिवेदी ने गहराई में पैठकर काव्य के मोती पाये हैं। कविता में यति, गति, लय, तुक, छंद सभी प्रशंसनीय हैं। वात्सल्य, करुणा, शान्त, श्रृंगार, वीर रसों का उद्वेक हुआ है। अनुप्रास, उपमा, रूपक अलंकारों को प्रमुख स्थान मिला है। भाषा की प्रांजलता तथा अनूठा शब्द चयन कविता के स्तर को समुन्नत करता है। शीर्षक वर्णित विषय के अनुरूप है। परास्नातक और प्रशिक्षण प्राप्त कवियत्री की काव्य रचना स्तरीय है जो उसकी भाषा विज्ञता, शब्द सामर्थ्य और रचनाधर्मिता से स्वयं सिद्ध हो जाती है। भावपक्ष, कलापक्ष दोनों उत्तम हैं। कल्पना शुक्ला का यह प्रथम सराहनीय प्रयास साहित्य जगत द्वारा समादृत होगा।

क्रंदन जनमानस को अवश्य झकझोरेगा और इससे समाज को सोचने पर विवश होना पड़ेगा। कवयित्री को इस रचना पर अशेष शुभकामनाएँ, शुभाशीष। 'शब्दांकुर प्रकाशन' को सुंदर शब्द संयोजन

हेतु साधुवाद।

शुभेच्छु –
रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी 'प्रलयंकर'
प्रधानाचार्य–सेठ श्री रामनाथ इंटर कालेज,
रुझेई, उन्नाव
(राज्य अध्यापक पुरस्कार 2017
से समलंकृत, ओज कवि, लेखक, संपादक)
दूरभाष–9450285915
तिथिः 21 जनवरी 2019

आशीर्वचन

कल्पना को शब्दों के रूप में व्यक्त करना असंभव भले ही न हो किन्तु कठिन अवश्य है। और जब कल्पना की कल्पना पर लिखना हो तो लेखनी के पगों में भी लड़खड़ाहट आ जाती है। आज कल्पना की कल्पना साकार हो कर क्रंदन के रूप में सामने है।

जब हम अपनी पहली पुस्तक लिखते हैं तो सोचते हैं कि शीर्षक उत्तम हो, शुभ हो! किन्तु कल्पना ने अपनी पहली काव्य पुस्तक का नाम 'क्रंदन' रखकर नारी के अदम्य साहस का परिचय दिया है। वैसे भी इस धरा पर हम अपना पहला पग क्रंदन के साथ ही रखते हैं।

कल्पना से मेरा पहला परिचय सेमरौता ग्राम में आयोजित कवि सम्मेलन में हुआ। आज कल मंचो के फ़ैशन से बहुत दूर उसकी सादगी बरबस मुझे आकर्षित कर गयी। उसका वो पहला गीत–

मम्मी बीच ही में बन्द क्यों पढाई कर दी।
अभी मेरी क्या उमर थी सगाई कर दी।।

श्रोताओं के लिए एक उत्कृष्ट गीत रहा, पर एक नारी होने के कारण मैं कल्पना की उस वेदना में डूब रही थी। यह सिर्फ एक गीत नहीं उन हजारों बालिकाओं का सामूहिक क्रंदन था जिनकी प्रतिभाओं के पंख उनकी उन्मुक्त उड़ान से पहले ही विवाह नामक कैंची से कतर दिए जाते हैं। जीवन के नृत्यमय तारिका मंडित सागर में उनके जीवन की नौका को कर्तव्यों की रस्सी से जकड़ दिया जाता है। उस मंच के बाद कल्पना अपनी गृहस्थी की कल्पना को साकार करने में लग गयी और तमाम कर्तव्यों के निर्वहन के बाद उनकी वही अंतर्वेदना क्रंदन के रूप में प्रस्फुटित हुई।

नारी विमर्श को उठाती हुई यह पुस्तक कहने को तो क्रंदन है, किन्तु एक–एक शब्द नारी की अदम्य जिजीविषा को उद्घाटित करता है ।

फ़िर क्या है ये कहना मुश्किल,
संसृति का एक अजूबा है।
यह है निमग्न संसार मध्य,
संसार इसी में डूबा है।।

इन पंक्तियों में जहाँ कवि बिहारी की भाँति भ्रान्तिमान अलंकार का सुंदरतम प्रयोग किया, वहीं सम्पूर्ण साक्ष्यों के साथ सरलतापूर्वक सहजता से नारी को ईश्वर के समकक्ष खड़ा कर दिया है। मेरे विचार से साहित्य जगत में नारी के विषय में सर्वश्रेष्ठ पंक्तियां हैं। इस सम्पूर्ण काव्यरचना का सार हैं यह पंक्तियां।

नारी के विविध रूपों का वर्णन करते हुए कवयित्री ने प्रकृति को नारी की सहेली के रूप में देखा। निसंदेह कवियत्री ने नारी को एक नयी उपमा से परिभाषित किया है।

उसकी टहनियाँ बढ़ी आगे
अम्बर से जी बहलाने को।
इसके पग भाग चले सत्वर
अज्ञात दिशा में जाने को।

जब जब उसमें शाखें निकली
मानव ने बढ़कर तोड़ दिया।
इसमें भी उठी उमंग अगर
झट छोर रेशमी ओढ़ लिया।

कवयित्री ने न सिर्फ नारी की तुलना प्रकृति से की है वरन उसने नारी और प्रकृति के साथ हो रहे अत्याचारों पर भी प्रश्न चिह्न खड़े किए हैं। यह रचना कवयित्री के प्रकृति प्रेम को भी दर्शाती है। उसका मन प्रकृति से हो रही छेड़छाड़ से भी आक्रोशित है।

कवयित्री का मानना है कि जिस प्रकार प्रकृति क्षरण को सहते–सहते महाप्रलय का स्रजन करती है ठीक उसी प्रकार जब नारी का धैर्य टूटता है तो विध्वंस जन्म लेता है।

जब जगती से सम्पूर्ण शान्ति –
सुख के साधन छिन जाते हैं।
तब वसुधा के श्रृंगार रूप,
सब जीव–जन्तु मिट जाते हैं।

यह काव्य केवल नारी का क्रंदन ही नहीं अपितु एक ललकार भी है। उसके क्रंदन के स्वर अंगार बन चुके हैं।

यदि सागर ने चौदह रत्नों को
जन्म दिया था एक बार।
तो नारी ने उत्पन्न किए
सैकड़ों बार हीरे हज़ार।।

किन्तु इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहीं क्रंदन रुलाता है, कहीं ललकारता है तो कहीं रसराज श्रृंगार रस की अनुभूति से भी परिचित कराता है।

मोती ने उसके दाँतो से,
जब सीखा प्रथम चमकना था।
हरिणों ने उसकी आंखों से,
जब देखा जग का सपना था।।

कवयित्री नारी में गंगा की पावनता देखती है और दोनों को मैली करने वालों से आहत दिखती है–

गंगा तो गंगा ही थी पर
यह भी थी गंगा सी पवित्र।
कर डाला किसी चितेरे की
कटुता ने कितना मलिन चित्र।।

कल रात गाँव से दूर, नदी–
गंगा पर झुके कगारों से।
कुछ चीख–पुकार सुनाई दी
नदिया के विमल किनारों से।।

सब शांत हुआ सब श्रांत हुए,
जब सहम गयी गंगा कि धार।
लिखने वालों ने छाप दिया,
कल फिर सामूहिक बलात्कार।

और शायद यही आज की नारी का सबसे बड़ा क्रंदन है। कवयित्री ने काव्य के समापन पर एक प्रश्न अनुत्तरित छोड़ा है, शायद इसलिए कि इसका उत्तर हमें और आपको सोचना है।

जो आज छिपा माँ के उर में,
वह कल बाहर अवश्य होगा?
बतला सकते हो तो बोलो,
कैसा उसका भविष्य होगा?

निसंदेह नारी विमर्श पर आंसू छंद में लिखी कल्पना की यह कृति अनुपम है। शृंगार, वीर, करूण रस में लिखी इस रचना में उपमा अलंकार की छवि दर्शनीय है। भाषा सरल है, रचना का भाव और कला पक्ष सबल है। माँ शारदा से प्रार्थना करती हूं कि कल्पना के सपनों के पंखों को अपने हंस जैसी उड़ान भरने की शक्ति दें।

शबिस्ता बृजेश
सरकारी अधिवक्ता
राष्ट्रीय कवयित्री, रायबरेली
सम्पर्क सूत्रः 6392586352

अपनी बात

पीड़ा के अपने शब्द नहीं होते और वेदना का सम्यक मूल्यांकन शब्दों के द्वारा सम्भव भी नहीं लगता। शब्द तो ब्रह्म हैं और पीड़ा भी अनंत। अतः शब्दों से वेदना की गहनता का उचित अंकन कर पाना मेरे लिए सरल न था और दोनों की थाह पाने की मेरी सामर्थ्य भी नहीं है।

मेरे अपने आस–पास पीड़ा के जो उत्स फूटे थे, उसी के दरस, परस और मज्जन, पान के फलस्वरूप यह लघु–रचना, यह क्रौंची–क्रंदन सबके समक्ष आज आ पाया। इस क्रौंची–क्रंदन में वैसी करुणा तो नहीं है जो मोह, माया–मुक्त महर्षि–मन को झकझोर दे, और आदि–कवि को कुछ कहने पर विवश कर दे। यह तो मात्र मेरा अरण्य–क्रंदन है जिसे जानें कोई कभी सुनेगा भी, या नहीं। जो भी हो इस पीड़ा, इस वेदना का नामकरण क्रंदन के अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है?

देखने वाले नन्हे बीज में ही वृक्ष का महाकार देख लेते हैं और न देखने वाले महाकाय विशाल वट–वृक्ष की भी उपेक्षा करते रहे हैं। ऐसे में मेरे इस तुलसी के नन्हे पौधे को कितना प्यार और आदर मिलेगा यह तो समय ही तय करेगा। उपेक्षाओं की कड़ी धूप में जब–जब यह तुलसी सूखती दिखेगी मैं अपने अंतर के करुणा–जल से यथा–शक्ति इसे सींचती रहूँगी।

मेरे शुभ–चिन्तकों का आभार व्यक्त करने का साहस और शक्ति मुझमे नहीं है। उन्हें नमन करती हूँ जो मुझे इसी तुलसी–बिरवे की तरह समझते हुए आदर और स्नेह देते हैं।

मैंने जिनकी पीड़ा और क्रंदन में अपने शब्द मिलाये हैं, उस

स्व–वर्ग (स्त्री–समुदाय) से अधिक अपेक्षा है कि मेरी वेदना को अपना स्वर और समर्थन अवश्य देंगी–

आभार ही करना करें किन्तु,
माँ सरस्वती की वीणा को।
जिसकी पावन झंकारों ने,
कुछ शब्द दिये इस पीड़ा को।।

मैंने बस उस के साथ–साथ,
वेदना मिला ली अंतर की।
विद्वज्जन क्षमा करेंगे मेरी,
बाल–सुलभ इस क्रीड़ा को।।

प्रस्तावना

त्रस्त कमनीय कामिनी आज,
रही माँ तेरी ओर निहार।
नष्ट कर तम की कारा क्रूर,
जागृत कर दे सद्व्यवहार।।

पकड़कर देता कभी मरोड़,
जलाकर कर देता है क्षार।
दृष्टि से निर्गत होता नहीं,
नारि पर नर का अत्याचार।।

छीन कर क्षीण दीन का प्यार,
बनी संसृति नृशंस अनुदार।
अपह्यत कर भी न दे सका,
एक नारी के स्व अधिकार।।

धरा कर नूपुर रुनझुन शून्य,
त्यक्त कर निःश्वन जग अभिसार।
रमणियों के कोमल पद कंज,
न कर जायें नीरव संसार।।

क्रंदन

(1)

नारी क्या है? यह प्रश्न उठा,
जगती के मानसरोवर में।
क्या समझूँ, किसे मान बैठूँ,
यह भाव उठा तत्क्षण उर में।

(2)

सोचा कवियों ने खूब कहा,
यह आशा युक्त निराशा है।
फिर सोचा यह तो घिसी-पिटी,
प्राचीन बड़ी परिभाषा है।।

(3)

कायरता है? जी कभी नहीं,
अवतार है दुर्गा-चण्डी का।
अबला है? बिलकुल शुद्ध झूठ
यह मत है किस पाखण्डी का?

(4)

फिर क्या है? कहना मुश्किल है,
संसृति का एक अजूबा है।
यह है निमग्न संसार मध्य,
संसार इसी में डूबा है।।

(5)

जानना सरल कहना मुश्किल,
क्या इन्द्रजाल क्या टोना है?
जिसने रचना की है उसकी,
रचना का सुघर खिलौना है।।

(6)

क्या कहूं मुझे कुछ कहना है,
देना होगा उत्तर मुझको।
हे प्रेम प्रदायिनी प्रेममूर्ति,
कह लूँ सुख की आकर तुझको।।

(7)

नव रूप बिखेरा जगती में,
अपने अनेक शुभ रूप धार।
धरणी के धूमिल हृदतल में,
है भरा हुआ तेरा दुलार।।

(8)

जननी का सजल स्नेह तेरा,
सम्पूर्ण जगत ने पाया है।
पत्नी के प्रेम प्रमादपूर्ण,
परिरम्भण की घन छाया है।।

(9)

भगिनी बन बाहों में तेरी,
बल विक्रम युक्त विहाग भरा।
नस-नस में अस्थि-अस्थि में भी,
अपना अतुल्य अनुराग भरा।।

(10)

किस निर्दय लौकिक बंधन में,
मर्याद महत्व भुला बैठी?
नर की मृदु-कर्कश बाहों में,
अपना अस्तित्व गुमा बैठी।।

(11)

सोने का तन तो बेच दिया,
चाँदी का मन भी गिरवीकर।
अपना अस्तित्व मिटा डाला,
रह गयी त्याग प्रतिमा बनकर।।

(12)

जो नरता को वो सदृश मिली,
पृथ्वीतल की मर्यादा है।
कुछ नम्र किए उन्नत ललाट,
का गौरव सीधा-सादा है।।

(13)

उसका अपमान न साधारण,
अपमान है संसृति सारी का।
कहते-कहते मन सहम गया,
उस त्रस्त सतायी नारी का।।

(14)

उसके आंसू टपके किसलय पर,
श्वेत शुद्ध बनकर शबनम।
करुणा को क्षुद्र सनाथ किया,
तटिनी तट ने कर हृदयंगम।।

(15)

मृदु श्वांस लू बनी प्रलयपूर्ण,
बन चली वाष्प तब शून्य चढ़ी।
बनकर सुमनोहर कादम्बिनि,
फिर जगती तल में बरस पड़ी।।

(16)

मन भी शीतल बन गया, पड़ी-
जब सुधा सिक्त दो चार बुन्द।
हृदमानस मचल उठा लिखने,
अवसान सदृश कुछ क्षुद्र छन्द।।

(17)

जिनसे कलियाँ शोभा पातीं,
सुमनों की सौरभश्री तू है।
जो जगतीतल पर लहराती,
जाज्वल्यमान वह खुशबू है।।

(18)

जबसे जगती उत्फुल्ल बनी,
जबसे कि तू उत्पन्न हुई।
जबसे सुषमा देवी आई,
तू सुषमा के आसन्न हुई।।

(19)

यह नियति और तू साथ-साथ,
जन्मी थी संग-संग खेली थी।
या यूँ कह लूँ यह प्रकृति और,
तू उसकी एक सहेली थी।।

(20)

दोनों उन्नति करते हि गए,
क्या अदभुत पूर्ण विकास हुआ।
दोनों की जीवन यात्रा का,
पहला-पहला मधुमास हुआ।।

(21)

उसकी टहनियाँ बढ़ीं आगे,
अम्बर से जी बहलाने को।
इसके पग भाग चले सत्वर,
अज्ञात दिशा में जाने को।।

(22)

देखा मानव की आँखो ने,
यह युवतियुग्म अति उत्तम है।
यद्यपि यह उससे अधिक बढ़ी,
तो वह भी क्या इससे कम है।।

(23)

बस दौड़ पड़ा सत्वर मानव,
उसकी टहनियाँ कुतर डाला।
जिससे न मृदुलता म्लान बने,
रंगीन वसन इस पर डाला।।

(24)

वह शाख हीन विकृत लतिका,
अब पूर्ण बन चली लट्ठा सा।
वह झीना सा कौशेय इधर,
इसको ढक रहा दुपट्टा सा।।

(25)

जब जब उसमें शाखें निकलीं,
तब-तब मानव ने तोड़ लिया।
इसमें भी उठी उमंग अगर,
झट छोर रेशमी ओढ़ लिया।।

(26)

उसका शैशव करुणा वंचित,
शृंगार हीन था माली में।
इसका नन्हा जीवन बीता,
पुरजन परिजन रखवाली में।।

(27)

कैंची करती परिक्रमा कठिन,
कैसे होतीं मुकुलित शाखें।
हर न्यून तरंग कुचल देती,
कैंची से तीव्र प्रखर आँखें।।

(28)

परिणाम प्रेम का द्वेष अथच,
काँक्षाएँ बिखरी हों मन की।
दुख पाना अश्रु स्रवण करना,
क्या यह परिभाषा जीवन की?

(29)

जीवन की भाषा अति दुरूह,
फिर लेखन उज्ज्वल स्याही का।
आधारहीन पट पर लिखना,
फिर पाठन अनपढ़ राही का।।

(30)

क्या सम्भव है तो? फिर कैसे-
यह जीना हो स्वीकार उसे।
यदि जीने देना है तो फिर,
देना होगा अधिकार उसे।।

(31)

तन पर शासन करते ही थे,
मन तो रहने देते स्वतंत्र,
यह वीर भोग्या वसुंधरा का,
बदलो अपना मूलमंत्र।।

(32)

कायर कोई होता ही नहीं,
कमज़ोर हुआ करते हैं बस।
यह कमज़ोरी ही कारण है,
जिससे छिन जाता है सरबस।।

(33)

नारी तो है कमज़ोर नहीं,
वह सरल तरल शीतल ही है।
उसका अंतरतल नम्र अधिक,
वह और अधिक कोमल ही है।।

(34)

खोकर अपना सर्वस्व, स्नेह-
देती, देती अभिशाप नहीं।
इनसे छल करने से बढ़कर,
दुनिया में दूजा पाप नहीं।।

(35)

इनका जीना अपराधी सा,
कैदी जीवन बंदीघर का।
है तुच्छ शरीर रिक्त केवल,
वह भोज्य मात्र भूखे नर का।।

(36)

इसके ही त्राण लिए इसने,
ओढ़ा झीना-झीना दुकूल।
उसने उर अन्तर्हित ही रख,
छोड़ा किसलय, फल, मंजु, फूल।।

(37)

करुणा करता पहला-पहला,
जिस दिन इसका शैशव आता।
घर की खुशियाँ छिन जाती हैं,
चेहरों पर मातम छा जाता।।

(38)

कितनी करुणा होती है उस-
घर की दीवारों से पूछो।
माँ-बाप नहीं माँ-बापों के,
चेतन आकारों से पूछो।।

(39)

ससुराल पहुंचकर करूण दशा,
फिर क्या रह जाती है बाकी?
अपने में ही निर्वसन नग्न,
साक्षात मूर्ति सी करुणा की।।

(40)

अपनी अथ-इति अपना सुख-दुख
अपने से बतराया करती।
अपनी करुणा का मौन गीत,
मन में ही दुहराया करती।।

(41)

किसमें सुनने की शक्ति शेष,
जो सुन ले उसके गीतों को।
मानव हृदतल तो चाह रहा-
है लास्य और संगीतो को।।

(42)

पर लास्य और संगीतो की,
भी अंत अवस्था है आती ।
जो लाखों अंतो तक ठहरी,
वो एक अकेली करुणा थी।।

(43)

जब जगती से सम्पूर्ण शान्ति,
सुख के साधन छिन जाते हैं।
जब वसुधा के शृंगार रूप,
जन, जीव, जन्तु मिट जाते हैं।।

(44)

जब महाप्रलय आ जाती है,
जब रह पाता कुछ शेष नहीं।
तब भी तो विकम्पित होता है,
करुणा का दुर्बल देश नहीं।।

(45)

कर क्रूर नियति ने दिया दैन्य,
नारी पर करुणा अवधारण।
जिसकी साँसे थीं छिन्नतार,
उस पर भी विस्तृत सा बंधन।।

(46)

यह वह करुणा जो पग-पग पर,
इसको यह याद दिलाती है।
तू नारी है सब हारी है,
बेचारी है बतलाती है।।

(47)

सचमुच ही दारुणतम स्थिति,
जगती तल पर है प्रति माँ की।
हिलती-डुलती सी वसनावृत,
उस पाषाणी उस प्रतिमा की।।

(48)

करुणा का मन, करुणा का तन,
करुणा केवल करुणा प्लावन।
क्या नारी केवल करुणा है?
करुणा केवल उसका जीवन?

(49)

लगता है वैवाहिक बंधन,
भी बंधन है ज़ंजीरों का।
उसका अपना पतिपुर भी तो,
बंदीघर है तकदीरों का।।

(50)

हैं ननद-सास संतरी, ससुर-
जेलर सम शोभा पाता है ।
यों उसके अपने पति का घर-
भी बंदीघर बन जाता है।।

(51)

पाश्चात्य प्रदेशों में देखो,
शादी केवल समझौता है।
पर धिक है अपने भारत में,
ये शादी यम का न्यौता है।।

(52)

जो कल्याणी भद्रे कहकर,
देवी सम तायी जाती थी।
श्रद्धे! सम्बोधन से सुषमा,
कुछ और बढ़ाई जाती थी।।

(53)

वह स्वीटहार्ट, मैडम, डीयर,
इत्यादि बनाई जाती है।
मिस, मिसेज, मेमसाहब से ही,
वह शान बुझाई जाती है।।

(54)

यह भी रचना है ब्रह्मा की,
क्या इसका कुछ अधिकार नहीं।
यह नारी क्या पाषाणी है,
जो इसे चाहिए प्यार नहीं।।

(55)

था एक समय जब मानव ने,
इससे पूछा जग का परिचय।
अपना परिचय पूछा, पूछा-
घर जाने के मग का परिचय।।

(56)

वह नन्हा भोला मानव ही,
जब पुरुष हुआ वाचाल हुआ।
निर्बुद्धि बताया नारी को,
यह बेचारी का हाल हुआ।।

(57)

अवगुण भी अष्ट लगा बकने,
जो हर नारी में होते हैं।
जो शताब्दियों से आज तलक,
मानस के पन्ने रोते हैं।।

(58)

दुस्साहस है इस नारी में,
कर लेती अनृतपूर्ण अभिनय।
चापल्यमूर्ति मायाविनि यह,
कर सकती पल में क्रूर अनय।।

(59)

अपवित्र और सुविवेक शून्यता,
हेतु प्रतारण दो इसको।
पर तुम कहते हो याद रहे,
इसका भी कारण दो इसको।।

(60)

तर्जनी पकड़ कर के हमने,
जब चलना इससे सीखा था।
इन आँखों को उस नारी में,
क्या अवगुण एक न दीखा था?

(61)

जब उससे कुछ कहना सीखा,
अज्ञान क्यों नहीं कहा उसे।
जब दूध पिया उसका उस क्षण,
अपवित्र क्यों नहीं कहा उसे?

(62)

निर्दय है क्रूर नियति से भी,
ये नागिन है विषवाली है।
जिसने सुख से हर मानव के,
जीवन में बाधा डाली है।।

(63)

क्यों बाह्य दमक में भटक गए,
अंतर्मन है काला इसका।
मत समझो अमिय पात्र इसको,
उर निन्द्य सुरा प्याला इसका।।

(64)

नारी वह मदिरा है जिसमें,
संसार मग्न हो जाता है।
फिर जाति-पाँति का ऊँच-नीच-
का, भेद नहीं रह जाता है।

(65)

उसके मदिराग अधर पीने में,
प्याले का कुछ काम नहीं।
तन-यौवन भरा मधुर मधु-घट,
सूराही का भी नाम नहीं।।

(66)

साकी की क्या आवश्यकता,
वह अपने हाथ पिलायेगी।
क्यों मदिरालय जाते हो तुम,
वह मदिरालय बन जायेगी।।

(67)

पहले कटु मूल्य चुकाता है,
पीछे लाकर मधु घट देता।
कितना चालाक लोभ वाला,
मदिरालय का मधु विक्रेता।।

(68)

पर यहाँ शौक से खूब पियो,
पी पाये जितना जिसका मन।
प्रतिदान मिलेगा बार-बार,
दे-देकर अधरों का चुम्बन।।

(69)

मधु घट रीते हो जाएंगे,
क्या ये मदिरा रीती होगी?
चाहे जितने दीवानों की,
टोली हरदम पीती होगी।।

(70)

यह मदिरावाली कहती है-
खुद पियो पिलाओ पीने दो।
हे! मेरी मदिरा के प्यारों
तुम जिओ मुझे भी जीने दो।।

(71)

जो सच्चे प्रेमी होते हैं-
वो जूठा कहाँ बनाते हैं।
मदिरा तो पीते हैं लेकिन,
मदिरालय तक कब जाते हैं?

(72)

यह तो है एक अनूठा ढंग,
मस्ती में जीने वालों का।
वास्तव में ये मदिरालय है,
आंखों से पीने वालों का।।

(73)

ये मदिरा पीने वालों की,
है जाति एक है धर्म एक।
सब मस्ती के दीवाने हैं,
है नाम,वंश व कर्म एक।।

(74)

जो मुख से पीने वाले हैं,
वो इस मदिरा के दुश्मन हैं।
उनसे व मदिरावाली से,
होती ही रहती अनबन है।।

(75)

ऐसी मदिरा को पीकर के,
कितने बेहोश पड़े होंगे।
कुछ आगे पीने वाले भी,
टोली में सधे खड़े होंगे।।

(76)

होगा परिणाम भयंकर ही,
ये भी मूर्छित हो जाएंगे।
मुख अगर छुआया मदिरा से,
तो फ़ौरन चित हो जाएंगे।।

(77)

इस मदिरा में भी आती है,
यद्यपि अपनी भी अंतिमता।
पर ये देती है मानव के,
जीवन को जीने की क्षमता।।

(78)

वह भूला रहता दुनिया को,
पर खुद को भूल न पाता है।
उस मदिरा से इस मदिरा में,
इतना अंतर बच जाता है।।

(79)

पीने पर फिर-फिर पीने पर,
होता फिर भी संतोष नहीं।
पीकर फिर फिरकर पी लेना,
मदिरा प्याली का दोष नहीं।।

(80)

सुन्दर है क्या? सुन्दरता पर,
बेसुध हो कर मरना अच्छा।
अपनी भूलों का आरोपण,
क्या औरों पर करना अच्छा?

(81)

मैं मान रही हूं यह नारी,
मदिरा है विषवाली भी है।
इतना कह चुकने पर कह लूँ,
वह अमृत रस प्याली भी है।।

(82)

कोमल स्पर्श कर सकता है,
पल में कितने रोगी-निरोग।
वृद्धापन भी मिट जाता है,
पाकर चल बंकिम नेत्र योग।।

(83)

उसकी नन्ही सी तरल हँसी,
करती सूखा मन हरा-भरा।
उसका कमनीयपना लखकर,
कितनों का पागल मन ठहरा।।

(84)

कितने मूकों को शब्दों के,
जादू से कर वाचाल दिया।
कितनी मृत, निष्प्रभ लाशों को,
ज़िन्दा कर जीवन डाल दिया।।

(85)

कितने प्यासों की प्यास गई,
भूखों को भोग मिला कितना?
अचरज है इस विष रस में भी,
अमृत का योग मिला कितना।।

(86)

यदि सागर ने चौदह रत्नों को,
जन्म दिया था एक बार।
तो नारी ने उत्पन्न किए,
सैकड़ों बार हीरे हज़ार।।

(87)

यह राम-कृष्ण, अल्ला ताला,
यह खुदा, मौहम्मद साहब जी।
यह गॉड, गुरू जरथुस कबीर,
ईसा मसीह आदिक त्यागी।।

(88)

जो सबके श्रद्धाभाजक हैं,
जो देववंश कहलाते हैं।
ऐसे सत्पुरुषों को केवल,
क्या मानव ही उपजाते हैं।।

(89)

नारी क्या केवल नारी है,
या केवल जीवन-संगिनि है।
सहगामिनि है,सहभागिनि है,
सहधर्मिणि है, अर्धांगिनि है।।

(90)

शशिमंडल सम शोभित आनन,
छवि दिवस ताप हर लेती है।
ऊषा की रश्मि-राशियों सी,
सुंदरता जग को देती है।।

(91)

मुकुलों ने कोमलता छीनी,
कलियों ने सुंदर तन पाया।
पुष्पों ने सौरभ श्री हड़पी,
तो तरुवर ने मधुरिल छाया।।

(92)

कोकिल ने मधुरिम कूकें भी,
इस नारी से बढ़कर छीना।
ओष्ठों की मधुरिम आभा से,
कुन्दुरु लगता हीना-हीना।।

(93)

मोती ने उसके दाँतों से,
जब सीखा प्रथम चमकना था।
हरिणों ने उसकी आँखों से,
जब देखा जग का सपना था।।

(94)

उन मधुर उरोजों की आभा,
कंदुक-सी पड़ी लखाई थी।
वक्षस्थल की रोमावलियों से,
लतिका भी शरमाई थी।।

(95)

उसकी कमनीय कमर देखी,
तो तितली को संकोच हुआ।
या सिंह-सिंहनी दम्पति को,
अपने पर भारी सोच हुआ।।

(96)
नाभी के चक्कर सा चक्कर,
यमुना जल भँवरों को आया।
उसकी मसृण जंघा लखकर,
खिसियाया कदली का पाया।।

(97)
कुछ देख-देख शरमाती थीं,
जूही की पीली कलिकाएँ।
क्या जाने क्या रस था उसमें,
जिससे हर रस फ़ीके जाएँ।।

(98)
उसके कुंतल की झिलमिल से,
मारुत ने जाना लहराना।
उसके नूपुर की कलध्वनि से,
कुल्याओं ने कल-कल जाना।।

(99)

फिर भी कहलाती है अबला,
निर्बल, अप्रज्ञ, बेचारी ही।
यद्यपि सर्वत्र साम्राज्ञी ही,
यह प्रकृति स्वरूपा नारी ही।।

(100)

होना कुरूप अभिशाप और,
सुंदर हो जाना महापाप।
इस भाग्य विहीना नारी के,
यह महादोष आप ही आप।।

(101)

मानव कहता है नारी का,
होना कुरूप स्वीकार्य नहीं।
कलुषित सुंदरता को धोकर-
भी, पावन करते आर्य नहीं।।

(102)

अपनी कश्चित मजबूरी से,
वेदना नहीं सकती सुधार।
मेरे चाचा मेरे ताऊ,
मेरे भैया मुझको सँभार।।

(103)

ऐसी अधीरता को निहार,
मन रह जाता है हार-हार।
देखा है तुमने यह मंज़र,
जो मैने देखा कई बार।।

(104)

यद्यपि देखा है बहुतों ने,
पर सबके अपने ढंग अजीब।
कुछ पास रहे पर बहुत दूर,
कुछ बहुत दूर पर थे करीब।।

(105)

घेरे कितने ही रहे किन्तु,
अपना मिलता है कहीं-कहीं।
तुमने भी तो देखा होगा,
कुछ यह घटना है नई नहीं।।

(106)

उस नारी की उर्वरा भूमि,
कुछ लगती बोई-बोई सी।
थी अस्त-व्यस्त एकान्त चकित,
नर कर में सोई-सोई सी।।

(107)

निर्माल्य हो चुका था दूषित,
मकरंद लुटा कर आई सी।
वह बासी कलिका के समान,
मध्यान्ह समय कुम्हलाई सी।।

(108)

लगती थी कुछ वेदना भरी,
सुर-सरिता की मंथर गति सी।
इसका भी हृदय प्रदूषित है,
दोनों समान ही हैं अति सी।।

(109)

गंगा तो गंगा ही थी पर,
यह भी गंगा सी थी पवित्र।
कर डाला किसी चितेरे की,
कटुता ने कितना मलिन चित्र।।

(110)

नित्य की भाँति इस बार-
आज का, नहीं रहा अमृत-प्रभात।
उसमें स्पष्ट दिख रहे थे,
जो ज़ुल्म हुए थे विगत रात।।

(111)

ऊपर था एक अधीर चित्र,
सुंदर सी किसी किशोरी का।
नीचे नर-पशुओं की लीला थी,
वर्णन था बरजोरी का।।

(112)

कल रात गाँव से दूर,
नदी गंगा पर झुके कगारों से।
कुछ चीख पुकार सुनाई दी,
नदिया के विमल किनारों से।।

(113)

सब शांत हुआ सब श्रान्त हुए,
जब सहम गयी गंगा कि धार।
लिखने वालों ने छाप दिया,
कल फिर सामूहिक बलात्कार।।

(114)

पत्रों ने उसके चित्रों को,
ले-लेकर पूर्ण प्रचार किया।
कितनी ही सत्य कथाओं ने,
उससे अपना व्यापार किया।

(115)

भोगी जाये तो जाए कहाँ,
दोषी कब होता गिरफ़्तार?
मैं सोच रही थी तभी सुना,
वे चारों के चारों फ़रार।।

(116)

जिसको सब प्यार कर चुके हैं,
है कौन उसे जो प्यार करे?
जिसको दुत्कार चुके हैं सब,
अब कौन उसे स्वीकार करे?

(117)

जो आज छिपा माँ के उर में,
वह कल बाहर अवश्य होगा।
बतला सकते हो तो बोलो,
कैसा उसका भविष्य होगा?

(118)

क्या यह जग उस आगन्तुक का-
भी कर पायेगा अभिनंदन?
तुम भी दोगे सम्मान उसे,
क्यों? क्या होगा उसका जीवन?